'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ६२ } वाराणसी, मंगलवार, २६ मई, १९५९ { पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन — खंभात (बंबई) ६-११-'५८

सुखी क्षेत्रों में सर्वोदय-आन्दोलन सबसे अधिक गहरा होना चाहिए

व्यापारी व्यापार में समय देने के बाद जितना समय मिलता है, उतना ही घर में देता है। मैंने ऐसे कितने ही व्यापारी देखे हैं, जो सुबह जल्दी उठते और रात को ११ बजे तक काम करते हैं। बही-खाते देख कर और जमा-खर्च करके 'रोकड़ ठीक है या नहीं,' इसकी जाँच करने के बाद ही सोते हैं। फिर जब आदमी सो जाता है तो वह इस लोक में नहीं रहता, सीधे ब्रह्मलोक पहुँच जाता है। इस तरह वह पाँच-छह घंटा वहीं रहता है। इसलिए उसका इतना समय न घर में बीतता है और न समाज में ही। इस तरह देखा जाय तो व्यापारी का दिन का ज्यादा समय व्यापार में ही लगता है और पाँच-छह घंटे ब्रह्मलोक में लगते हैं। शेष समय ही घर में बीतता है। व्यापारी को खाने के लिए भी फुर्सत नहीं मिलती। एक व्यापारी भाई मुझसे कह रहे थे कि 'जो आदमी दस मिनट में भोजन नहीं करता, वह कभी अच्छा व्यापारी नहीं बन सकता।' फिर आध घंटा भोजन में कैसे दिया जा सकता है? इस तरह स्पष्ट है कि व्यापार सार्वजनिक कार्य है और व्यापारी उसी में अधिक-से-अधिक समय देता है। जो यह जानते नहीं, वे कहते हैं कि 'यह तो हमारा धंधा है।' लेकिन वास्तव में वह सार्वजनिक सेवा है।

प्रामाणिकता से चलें तो सभी राष्ट्र-सेवक हैं

किसान भी अपने खेत की सेवा में और अपने बाल-बच्चों के लिए कितना समय देता है, इसे भी देखें। यदि हम दिन के दो विभाग बनायें तो पता चलेगा कि उसका पूरा दिन खेत में ही बीतता है और खेती की उपज सारे देश के लिए ही होती है। इसलिए वह सार्वजनिक सेवा का महत्त्व का पहला काम है। बाद में ही घर के काम की बारी आती है। इसी प्रकार माता-पिता पहले अपने बच्चों को खिलाते हैं और बाद में खुद खाते हैं। घर के और लोगों का महत्त्व अधिक और अपना कम, ऐसा प्रत्येक घर में होता है।

इस तरह स्पष्ट है कि समाज का महत्त्व सबसे अधिक, उससे कम घर का और उससे भी कम अपना है। अतः प्रथम समाज को देने के बाद ही कोई चीज अपने लिए उपयोग में लानी चाहिए। यह बात केवल धर्मग्रन्थों में नहीं, बल्कि आज भी इनका प्रचलन है। अगर हम सिर्फ प्रामाणिकता से व्यापार या नौकरी करें, सत्यनिष्ठा से चलें और किसी को धोखा न दें तो लगभग सभी राष्ट्र-सेवक और समाज-सेवक ही हैं।

सम्मति का सूचक सर्वोदय-पात्र

मैं तो सिर्फ एक मुट्ठी अनाज ही माँगता हूँ। वह कोई कठिन बात नहीं है। इस जिले में वह बहुत अच्छी तरह चल सकता है। यह एक मुट्ठी अनाज दरिद्रों के लिए नहीं है। दरिद्रों के लिए मुट्ठीभर अनाज तो हँसी की बात होगी। आज मैं जो यह मुट्ठीभर अनाज माँगता हूँ, वह शांति और अहिंसा को अर्पण होगा। इसे देनेवाला यही संकल्प करेगा कि 'मैं अपने घर में शांति रखना चाहता हूँ। मुझे अहिंसा में श्रद्धा है और इसी अहिंसा के लिए मेरा यह सक्रिय मत है। इस मुट्ठीभर अनाज द्वारा मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इस घर से एक भी पत्थर नहीं फेंका जायगा। शांति-सैनिक शांति के लिए जो कार्य करेगा, उसमें मेरी संपूर्ण सहानुभूति और संमति है। उसके प्रतीक रूप में ही मैं अपने घर में यह सर्वोदय-पात्र रख रहा हूँ।'

खेड़ा जिला आगे रहेगा

आज सबेरे स्वागत में बहुत सी बहनें सिर पर सर्वोदय-पात्र लेकर आयी थीं। बड़ा ही सुन्दर प्रदर्शन रहा। लेकिन खेड़ा जिले में तो मुझे शत-प्रतिशत सर्वोदय-पात्र चाहिए। यह पराक्रम किये बिना चल नहीं सकता। अतः सार्वजनिक सभाएँ करनी चाहिए, घर-घर जाकर सर्वोदय-पात्र का विचार समझाना चाहिए। व्यापक परिमाण में ज्ञान-प्रचार किये बिना चलनेवाला नहीं है।

आज ही एक भाई मुझसे सवाल पूछ रहे थे कि इस जिले से शांति-सैनिक कम मिलेंगे या अधिक। मेरा खयाल है कि इस जिले से अधिक शांति-सैनिक मिलने चाहिए। आज तक जितनी भी हलचलें हुईं, उनमें खेड़ा जिले से ही अधिक से अधिक लोग गये हैं या नहीं, इसका आप ही हिसाब लगा लीजिये। हिन्दुस्तान में जो भी आन्दोलन चला, उसमें खेड़ा जिले के सबसे अधिक लोग भाग लिये हुए हैं। तब इस जिले में शांति-सैनिक कम मिलेंगे, यह मानने का कोई कारण नहीं है। अगर शांति-सेना में यह जिला पीछे रह जाय तो उसके लिए अपमान-

जनक ही होगा। यह सच है कि इस जिले के लोग जरा तेज-मिजाज हैं, जब कि शांति-सेना में मिजाज ठंढा होना चाहिए। अगर स्वभाव की वजह से रुकावट आये तो जरा कठिन है। शांति-सेना में तो दिमाग ठंढा ही रखना चाहिए, नहीं तो उसका काम ही नहीं होगा।

अब क्षोभ के लिए अवकाश नहीं है

मैं तो कहता हूँ कि अगर दिमाग ठिकाने न हो तो शांति-सेना का काम ही क्या? सशस्त्र सेना का काम भी जोर-शोर से नहीं हो सकता। शांति-सेना में तो जोर-शोर चलता ही नहीं। लेकिन लश्कर में भी जोर-शोर नहीं चल सकता। सेना में सेनापति हुक्म देता है कि पचास कदम आगे बढ़ो तो तुरंत ही सबको पचास कदम आगे बढ़ना चाहिए। उसमें अगर कोई साठ कदम बढ़े तो नहीं चल सकता। पचास का हुक्म हुआ हो तो पचास कदम ही आगे बढ़ना होगा और यदि आधा मील आगे बढ़ने का हुक्म हो तो बराबर आधा मील ही आगे बढ़ना होगा। अगर कोई सैनिक उससे भी आगे दौड़ने लगे तो तुरंत गोली मार कर उसका काम तमाम कर दिया जाता है। इस तरह लश्कर (सेना) में क्षोभ को अवकाश नहीं। शांति-सेना में भी क्षोभ को अवकाश नहीं है।

आजकल तो सशस्त्र सेना में गणित के आधार पर काम चलता है। पहले तो तलवारों से युद्ध होता था। जो भागा सो भागा और जो गिरा सो मरा। सेनापति को हमेशा सेना के आगे ही रहना पड़ता था। लेकिन आज के सेनापति सेना के आगे नहीं रहते हैं। वे तो मोरचे से १०० मील दूर खेमे में नक्शे लेकर व्यूह बनाते बैठे रहते हैं और शत्रुओं की सेना और अपनी सेना का अन्दाजा लगाकर हुक्म देते हैं। इतना ही नहीं, आजकल जो शस्त्र उपयोग में आते हैं, वे भी तलवार जैसे शस्त्र नहीं। आज तो दूरगामी शस्त्रों का उपयोग होता है। पहले कोई तलवार का वार करे और सामनेवाला अपनी तलवार न उठाये तो क्रोध आता था। लेकिन अब तो शस्त्र दूर से फेंकने होते हैं, इसलिए आजकल क्षोभ के लिए अवसर नहीं है।

सलक्ष्य काम कीजिए

एक बार गुरु ने पांडवों की परीक्षा ली। पक्षी का शिकार करना था। युधिष्ठिर से पूछा गया कि 'तुम्हें सामने क्या दीख रहा है।' युधिष्ठिर ने जवाब दिया कि 'स्थान भी दिखाता है, पक्षी भी दिखाता है और गुरुजी! आप भी दीखते हैं।' गुरुजी ने कहा कि 'तुम फेल हुए।' यही सवाल अन्य भाइयों से भी पूछा गया तो उन्होंने भी यही जवाब दिया कि 'वृक्ष, पक्षी गुरुजी वगैरह सब कुछ नजर आता है।' गुरुजी ने सभी को फेल कर दिया। आखिर अर्जुन की बारी आयी। उससे पूछा गया कि 'तुम्हें क्या दीखता है?' अर्जुन ने कहा कि 'मुझे लक्ष्य के सिवा कुछ भी नहीं दीखता।' तब गुरु द्रोणाचार्य ने उसे तीर छोड़ने के लिए कहा और पास भी कर दिया। ठीक इसी तरह हमारा काम भी चलता है। दूर से लक्ष्य को देखा जाय और धारणापूर्वक लक्ष्यवेध किया जाय तो क्षोभ को कोई अवकाश ही नहीं है।

विज्ञान-युग में क्षोभ करने से मनुष्य चल नहीं पायेगा। सार्वजनिक काम, घर का काम और सेना का काम भी मनुष्य को शान्त मन से करना होगा। अगर कूटनीतिज्ञ अपने सामने बैठकर गुस्से से काम ले तो वह कूटनीतिज्ञ ही नहीं। इसलिए आज निजी या सार्वजनिक, हिंसक या अहिंसक किसी भी व्यवहार में क्षोभ को अवकाश नहीं है। अगर उसका उपयोग हो तो हम हार और मार दोनों खायेंगे। शांति-सेना में जो लोग क्रोध करेंगे, वे या तो मार खायेंगे या हारेंगे। इसलिए मानसिक परिवर्तन आवश्यक है। मानसिक आवेग हृदय में रखना चाहिए और प्रयत्न करना चाहिए। अगर भाप को इंजिन से निकाल दिया जाय तो सारी शक्ति ही चली जायगी। लेकिन उसे रोक लिया जाय तो शक्ति पैदा होती है। इसी तरह अगर वाणी में जोश प्रकट कर दें तो बल न रहेगा। मैं जोश को हृदय में संग्रह कर शक्ति उत्पन्न करने के लिए कहता हूँ।

पूरा आधार पैसे पर ही मत रखिये

खेड़ा जिले में ऐसा कोई कारण नहीं है कि यहाँ ग्रामदान न हो। कितने ही लोग कहते हैं कि यहाँ जमीन महँगी है। यहाँ दक्षिण-अफ्रिका से पैसा आता है। यहाँ का दूध बेच कर बम्बई से भी पैसा आता है। जमीन में तम्बाकू बोकर भी पैसा प्राप्त किया जाता है। मानो इसमें कुछ कमी समझ कर उसे पूरा करने के लिए अभी-अभी 'लूणेज' में से 'लवण' नहीं, तेल भी निकला। इस तरह यहाँ चारों ओर से पैसा प्राप्त करने का तंत्र खड़ा हो गया है। आज एक भाई मुझसे कह रहे थे कि यहाँ से बहुत से लोग दक्षिण-अफ्रिका गये हैं। इसलिए एक कहावत ही चल पड़ी है कि "जे जाप जावे, ते पाछो न आवे।" "ने आवे तो पोरियांनां पोरीयां चावे एरले धन लावे"। जो आदमी विदेश जाता है, वह वापस नहीं आता और अगर आता है तो बहुत धन लेकर लौटता है। किन्तु इस तरह इस जिले के सयाने आदमी बाहर जाते हैं और वहाँ से धन भेजते हैं तो यहाँ मूर्ख लोग ही शेष रह जाते हैं। ऐसा ही आजकल देहातों में भी हो रहा है। गाँवों में से श्रम-शक्ति और बुद्धि-शक्ति दोनों बाहर जा रही हैं। इस तरह गाँव में तो मूर्ख ही रह जाता है। कल उसको पैसा चाहे जितना मिले, लेकिन श्रम और विद्या तो गाँव के बाहर ही चले जाते हैं, इसलिए सोचने की बात है कि अगर जिले की यही हालत रही तो वह आगे कैसे बढ़ेगा?

इसलिए आप लोगों को तम्बाकू और दूध बेचकर पूरा आधार पैसों पर नहीं रखना चाहिए। उसके बदले में अगर दूध पीयेंगे तो मजबूत बनेंगे और बुद्धि भी अच्छी रहेगी। जो जमीन सुवर्ण पैदा कर सकती है, उसमें जहर नहीं पैदा करना चाहिए। जमीन में तम्बाकू बोने से देश को नुकसान होता है। जहर बेचकर हम नाचें-कूदें तो वह कोई अच्छी बात नहीं है। अगर हम उसी के सहारे जीते रहें तो थोड़े ही दिनों में पश्चात्ताप करने का मौका आयेगा। इसलिए केवल पैसे पर ही आधारवाली व्यवस्था बदल डालनी चाहिए। तभी सब सुखी होंगे। पैसा लफंगा है। आज कुछ बोलता है तो कल कुछ। आज उससे चार सेर अनाज मिलेगा तो कल दो सेर। इस तरह इसके मूल्य और भाव कभी स्थिर नहीं हैं।

गाँव एक परिवार है

मान लीजिये, कल दुनिया में युद्ध छिड़ जाय, देश की आयात-निर्यात बंद हो जाय तथा उसके परिणामस्वरूप पंचवर्षीय योजना कागज के महल की तरह टूट जाय तो गाँव का जीवन बड़ा ही कठिन हो जायगा। कारण गाँव में दूध और अनाज तो रहेगा नहीं, सिर्फ पैसा रहने से क्या होगा? ऐसी अवस्था में हम गाँव को बचा नहीं सकते। पिछले विश्व-युद्ध में बंगाल के अकाल के समय हमने सारा दोष विदेशी सरकार पर मढ़ दिया, लेकिन अब तो हमारी अपनी सरकार है। अब किसे दोष देंगे?

वास्तव में पूरा गाँव एक परिवार है। गाँव के गरीब भाई हमारे भाई हैं। उनकी चिंता हमें करनी ही चाहिए। जो लोग श्रम करनेवाले हैं, उनकी देखभाल रखना हमारे और गाँव के हित की बात है। अगर इतनी ही बात हम समझ जायँ तो ग्राम-स्वराज्य बिलकुल आसान है। ग्रामदान का मतलब जमीन छीन लेना नहीं है। ग्रामदान में जिम्मेवारी पूरे गाँव की होती है और जमीन की मालकियत ग्रामसभा की रहती है। ग्रामसभा सर्व-सम्मति से जो निर्णय करती है, वही चलता है। वहाँ सरकारी कानून का प्रवेश नहीं हो पाता। इसलिए ग्रामस्वराज्य की स्थापना हो तो गाँववाले सुखी हो जायेंगे।

ग्रामदानी गाँवों में हर परिवार को करीब आधा एकड़ जमीन साग-भाजी के लिए देनी चाहिए। बाकी जमीन के बीस-पचीस एकड़ के टुकड़े करना चाहें तो उस तरह भी लोगों को बाँट सकते हैं। किन्तु गाँव के भूमिहीनों को हिस्सा मिलना ही चाहिए। अगर अधिक जमीन न हो तो गाँव में ग्रामोद्योग शुरू किये जायँ। फिर सबको ग्रामोद्योग न बाँट सकें तो सबको खाना देना ग्रामसभा का काम है। इस तरह अगर ग्रामदान होते हैं तो सारे गाँव के लोग एक-दूसरे की चिन्ता करने लगेंगे। जमीन की मालकियत व्यक्तिगत नहीं रहेगी। आज के बड़े मालिकों का ऊँचा जीवनस्तर एकदम नीचे उतरने से उन्हें बहुत असुविधा का सामना करना पड़ेगा, इसलिए दस साल तक वे अपने पास सर्वसाधारण से कुछ अधिक जमीन रख सकते हैं। जिस तरह राजा-महाराजाओं को वर्षासन देते रहे, उस तरह इनको भी राहत के तौर पर थोड़ी अधिक जमीन दस साल तक रखने दी जा सकती है।

ग्रामदान : अभयदान

संक्षेप में ग्रामदान का मतलब है सबका समाधान। इसलिए ग्रामदान 'अभयदान' है। ग्रामदान में घबड़ाने की कोई बात नहीं है। ग्रामदान होने के बाद सरकारी कानून हैरान न करेंगे। सरकार के कानून अच्छे उद्देश्यों के लिए होने पर भी वे नुकसान ही करते हैं। उनमें प्रत्येक आदमी के हित का अलग विचार नहीं होता। उससे कितनों को न्याय तो कितनों को अन्याय भी मिलता है। कानून की वजह से कितनों को दुःख भी पहुँचता है। जिस तरह स्टीम-रोलर एक साथ सब कुछ कुचल डालता है, उसी तरह कानून भी सबको एक ही तरह हाथ में लेता है। लेकिन ग्रामदान के पश्चात् ग्रामसभा जो सर्वानुमति से प्रस्ताव करेगी, वही कानून होगा। लेकिन लोग उल्टा समझते हैं कि जैसे सरकार हमारी जमीन लूटना चाहती है, वैसे ही यह बाबा भी हमारी जमीन लूटने को आये हैं। लेकिन बाबा जिस ग्रामदान की भूमिका बनाते हैं, उससे अधिक सुरक्षित भूमिका दूसरी कोई नहीं हो सकती। मेरी कई अर्थशास्त्रियों से बातचीत हुई है। ग्रामदान से अच्छी, सुरक्षित और हितदायी योजना अभी तक किसी ने नहीं बतायी है। अगर कोई मुझे बता दे कि अमुक योजना विशेष हितकर है तो मैं अपनी योजना बदलने को तैयार हूँ। मुझे विश्वास है कि यह जिला सुखी है, इसलिए विचार करेगा और ग्रामदान करेगा। ग्रामदान में थोड़ा त्याग करना पड़ता है। लेकिन वह त्याग तो वैसा ही है, जैसे खेती में फसल के बीज बोना। खेत में हम बीज बोते हैं तो भगवान हमें उसके एक के हजार करके देता है। तब क्या हम उसे बीज का त्याग कह सकते हैं? इसलिए ग्रामदान में त्याग जैसी कोई बात नहीं है। वास्तव में ग्रामदान ऐसा किला है, जिसमें रहने से बाहर किसी तरह का हमला नहीं हो सकता। उल्टे बाहरी मदद ठीक-ठीक मिलने लगती है।

धर्म-भावना सब के लिए है

कई लोग मुझसे कहते हैं कि ग्रामदान की बात गरीब ही समझ सकते हैं, अमीर नहीं। नीति-धर्म के सन्देश गरीब जल्दी समझते हैं, अमीर नहीं। लेकिन यह भ्रान्त धारणा है। यह एकांगी तुलना है। इतिहास देखें तो स्पष्ट हो जायगा कि ऐसी धर्म-भावनावाले श्रीमान, गरीब सभी वर्गों से मिलते हैं। शंकराचार्य अत्यन्त गरीब कुल में हुए। इसके विपरीत गौतम बुद्ध अत्यन्त धनवान के यहाँ हुए। महात्मा गांधी मध्यम वर्ग के थे। इसलिए धर्म-भावना न सिर्फ दरिद्र के लिए है, न श्रीमानों के लिए और न मध्यम वर्ग के लिए। वह सभी के लिए है। वह दारिद्र्य में ही विकसित होती है, ऐसी बात नहीं। जहाँ महाराज मिथिलेश को सारी मिथिला जल जाने पर भी लगा कि मेरा कुछ नहीं जला, वहीं शुकदेव जी सब कुछ त्याग नंगे भाग रहे थे। ये दोनों अलग-अलग दृश्य दीखने पर भी दोनों का पंथ एक ही है। इसलिए हमें यहाँ अच्छे कार्यकर्ता मिलने चाहिए।

तीन कार्यक्रम

बहुत-से लोग कहते हैं कि खेड़ा जिले में ग्रामदान नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ पैसे के लिए ही खेती होती है। जहाँ पैसा न हो, वहीं ग्रामदान हो सकता है। मैं उनसे पूछता हूँ कि क्या जहाँ लक्ष्मी रहती है, वहाँ विष्णु नहीं रहते? यहाँ लक्ष्मी है तो क्या विष्णु नहीं हैं? फिर जहाँ वैष्णव रहते हैं, वहाँ ग्रामदान का विचार क्यों नहीं होगा? यह बिलकुल सीधा-सादा विचार है। इसमें सारी जमीन एक करने की ही बात नहीं है। गाँववाले जैसा चाहें, कर सकते हैं। सिर्फ मालकियत गाँव की करनी है। मैं अपना यह विचार आप पर लादना नहीं चाहता। आप इस पर खूब सोचें और फिर पसंद पड़े तो इसे उठा लें। मैं आपके जिले के लिए तीन कार्यक्रम रख रहा हूँ—(१) घर-घर में सर्वोदय-पात्र रखा जाय। (२) शान्ति-सैनिक प्राप्त हों और (३) ग्रामदान के आधार पर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना की जाय। ♦♦♦

(गतांक से समाप्त)

खादी-प्रचार !

बहुत लोग दुःख प्रकट करते हैं कि खादी का प्रचार जितना होना चाहिए, उतना नहीं हो रहा है। लेकिन इससे मुझे दुःख नहीं है। क्योंकि मैं जानता हूँ कि खादी बीड़ी का बंडल या लिप्टन की चाय नहीं, बल्कि खादी एक विचार है।

आग लगाने को कहें तो देर नहीं लगती, पर यदि गाँव बसाने को कहें तो उसमें कितना समय लगेगा, इसका भी जरा विचार कीजिये। खादी विध्वंस का नहीं, निर्माण का काम है। इसलिए खादी की प्रगति धीमी है तो इसका कोई दुःख नहीं है। यह तो सौभाग्य है।

♦♦♦

प्रार्थना-प्रवचन होशियारपुर (पंजाब) १४-५-'५९

अध्यात्मविद्या बुनियाद है, नीति-विचार मकान है और व्यवहार छत है

धर्म-निरपेक्षता की विडम्बना

आज शिक्षकों से बातें हो रही थीं, तब उन्होंने कहा कि स्कूलों में पंजाबी, अंग्रेजी आदि पढ़ाया जाता है। हमने पूछा कि क्या 'गुरुवाणी' पढ़ाई जाती है तो जवाब मिला कि पहले पाँच साल तक तो नहीं पढ़ाई जाती है, बाद में पंजाबी भाषा के अध्ययन में कविता के तौर पर गुरुवाणी के कुछ पद्य पढ़ाये जाते हैं। हमने कहा कि कविता के तौर पर नहीं, बल्कि अखलाकी चीज के तौर पर बच्चों को गुरुवाणी पढ़ाई जाय तो उनके जीवन में काम आयेगी।

सच्चाई कैसे आयेगी, झूठ की दिवाल कैसे टूटेगी ? जवाब दिया जाता है कि परमेश्वर के हुक्म से चलें तब। मैंने कहा कि इस प्रकार की चीजें बच्चों को बचपन से ही क्यों नहीं पढ़ाई जाती हैं तो शिक्षकों ने जवाब दिया कि धर्म-निरपेक्ष शिक्षण में यह कैसे पढ़ाया सकता है। जहाँ तक हम समझे हैं, एक मजहब को दूसरे से श्रेष्ठ बताना, किसी एक की निन्दा करना या देवी-देवताओं की पूजा सिखाना आदि बातें धर्म-निरपेक्ष शिक्षण में नहीं आती हैं। गुरुवाणी में तो सब सर्वोदय की ही बातें हैं। उसमें पचासों देवताओं की नहीं, बल्कि एक ही परमेश्वर को मानने की बात है। 'एक ॐकार सत् नाम', यह एक ऐसी चीज है, जो किसी धर्म के खिलाफ नहीं है। संतों की राह पर चलो, दान दो, दया से बरतो, बाँटकर खाओ आदि नीति-विचार है और वह धर्म-निरपेक्ष राज्य के खिलाफ नहीं है।

इन दिनों हम लोगों में जीवन के टुकड़े करने की आदत पड़ गयी है। सामाजिक पहलू अलग, नैतिक पहलू अलग, आध्यात्मिक पहलू अलग—इस तरह अलग-अलग पहलू बनाये गये हैं। उसका परिणाम यह हुआ है कि सामाजिक क्षेत्र में काम करनेवाले नीति-विचार के बारे में सोचते नहीं, नीति का काम करनेवाले समाज के मसले हाथ में नहीं लेते और अध्यात्मवादी दोनों की तरफ ध्यान नहीं देते। इस तरह टुकड़े कर के हमने जीवन को छिन्न-विच्छिन्न कर दिया है। व्यापारी इधर भगवान की भक्ति करता है, पूजा-पाठ करता है और उधर व्यवहार-में झूठ चलाता है। इस तरह वह तीर्थयात्रा, ध्यान, जप-जाप आदि करेगा, लेकिन सत्य व्यापार के खिलाफ है, ऐसा अवश्य कहेगा। व्यापार अलग और सत्य, प्रेम, दया अलग। व्यापारी दुःखियों के वास्ते दान देगा, लेकिन व्यापार में दया नहीं रखेगा! यह नहीं सोचेगा कि व्यापार में भी दया पड़ी है। हम गलत ढंग से व्यापार करते हैं तो समाज को दुःख पहुँचता है। इस तरह हमने व्यवहार को नीति से अलग रखा और नीति को अध्यात्म से अलग रखा।

निवृत्ति-मार्ग की विडम्बना

हमें कुछ ऐसे जैन भाई मिले, जो कहते हैं कि दया करना निवृत्ति-धर्म के खिलाफ है, अध्यात्म के खिलाफ है। निवृत्ति-धर्म कहता है कि हरएक को अपना प्रारब्ध भोगना चाहिए। हम किसी बीमार की सेवा करने जाते हैं तो उसके प्रारब्ध में दखल देते हैं।

मैं बीमार हुआ तो मान लो कि पिछले जन्म की या इस जन्म की कुछ गलती होगी। इस जन्म की गलती हो तो उसे सुधारूंगा। पुराने जन्म की हो तो प्रारब्ध को भोगूंगा। इस तरह मैं अपने लिए कह सकता हूँ, लेकिन लोग दुःखी व बीमार पड़े हैं और मैं ज्ञानी होकर उनसे यह कहूँ कि तुम्हारा प्रारब्ध क्षय हो रहा है, उसमें मैं सेवा करके दखल नहीं दूँगा, क्योंकि मैं निवृत्ति-परायण हूँ तो क्या कहा जायगा ? अध्यात्मवादी सेवा को ही गलत मानते हैं। यह बात ठीक है कि सेवा में अहंकार हो तो वह सेवा अध्यात्म के खिलाफ होगी, लेकिन क्या यह जरूरी है कि सेवा में अहंकार हो ही। सेवा निष्काम भी हो सकती है। भगवद्गीता ने हमें निरहंकार सेवा करना सिखाया है, परन्तु लोगों ने आध्यात्मिक सेवा को यहाँ तक निवृत्ति-परायण बनाया कि उसका सेवा या नीति से कोई सम्बन्ध नहीं रहा है। उधर व्यवहार को भी नीति से अगल रखा है। इस तरह नीति की हालत ऐसी हो गयी है कि बेचारी 'न घर की रही है, न घाट की'। न उसे अध्यात्म पूछता है, न व्यवहार। निवृत्ति के नाम पर हिन्दुस्तान में ऐसी अजीब बातें चली हैं।

दूसरी तरफ व्यवहार में इतनी लूट चल रही है कि हिन्दुस्तान में काला बाजार तो काला है ही, लेकिन सफेद बाजार भी काला है। सफेद बाजार में बेचनेवाले और खरीदनेवाले की अक्ल की बड़ाई होती है और फिर भी कहा जाता है कि हिन्दुस्तान के लोग धार्मिक हैं, श्रद्धावान हैं। इधर नीति का व्यवहार से ताल्लुक नहीं, उधर अध्यात्मवाले इतने आगे चले गये हैं कि नीति की बात सोचते ही नहीं हैं।

सेवा से ही वासनामुक्त होंगे

अध्यात्मवादी समझते हैं कि वे मुक्ति की राह में हैं, परन्तु देह के रहते मुक्ति कैसे सम्भव है। मुक्ति के लिए वासना कम होनी चाहिए। वासना कम होने के लिए परोपकार का काम मदद देगा। वासना इस शरीर के इर्द-गिर्द रहा करती है, इसलिए वासना रखे बिना सारा देह समाज की सेवा में लगा दिया जाय तो वासना खत्म हो जायगी।

हमारे यहाँ का संन्यासी सेवा नहीं करता है। समाज से भीख मागकर खाता है और हमेशा खाने के साथ रोता है कि मैं गलत काम करता हूँ। क्या यह कोई अध्यात्म है ? समझना चाहिए कि हमने यह चोला किसलिए पहना है ? इसे समाज की सेवा में लगा देना चाहिए। खाना खाते समय समझना चाहिए कि शरीर से सेवा का काम लेना है, इसलिए समाज-सेवा के लिए ही उसे खिलाना है, यह दृष्टि रही तो वह ज्यादा नहीं खायेगा और वासना से भी मुक्ति पा जायगा। 'वह छोड़ो-यह छोड़ो' कहने से वासना नहीं जाती है। अपना शरीर समाज का है, यों सोचकर तदनुसार उसे घिसते रहो और निरन्तर परमेश्वर का स्मरण करते रहो तो वासना का क्षय होगा। भौतिक दृष्टि रही तो समाज-सेवा का काम करने से भी वासना का क्षय नहीं होगा। जो राग-द्वेष, अहंकार, मान-अपमान आदि की भावनाएँ परिवार में पैदा होती हैं, वही सब बड़े-बड़े समाज-सेवकों में भी दीखती हैं। बाबा देखता है कि किसी योगी की उससे ज्यादा कदर होती है तो उसके मन में मत्सर पैदा होता है कि मैं तो २९ हजार मील घूमकर आया हूँ, लेकिन फिर भी मुझे कम सम्मान मिल रहा है। इसका मतलब यह है कि हम केवल समाज-सेवा में लग गये, इतने से चित्त-शुद्धि होगी, आध्यात्मिक उन्नति होगी,

ऐसी बात नहीं है। इसलिए समाज-सेवा में तो लग ही जाना चाहिए, लेकिन उसके साथ-साथ चित्त-शुद्धि की कोशिश, आध्यात्मिक साधना भी चलनी चाहिए। हमें समझना चाहिए कि समाज-सेवा के बिना हमारे शरीर की कोई हस्ती नहीं है। जब हमें शरीर के लिए खाना पड़ता है तो समाज-सेवा करने में क्या हर्ज है।

शरीर समाज के लिए हो

एक जगह कुछ बड़े लोग हमसे कह रहे थे कि हम भूदान का काम करना चाहते हैं, लेकिन हमारी एक भावना है, वह पूरी होने तक हम भूदान का काम नहीं कर सकते हैं, न तब तक पूजापाठ ही कर सकते हैं। हमने कहा कि वह वासना पूरी होने तक आप खाते रहेंगे, लेकिन खिलाने का, सेवा का काम नहीं करेंगे। याने खाने में अड़चन नहीं है, अड़चन खिलाने में है! परमार्थ में अड़चन है, पेट की पूजा करने में अड़चन नहीं, भगवान की पूजा करने में अड़चन है! यह इसलिए होता है, क्योंकि खाने के बिना चारा नहीं है, वहाँ हम लाचार हैं। कोई भी सच्चा साधक इस तरह लाचार नहीं बनेगा। वह कहेगा कि मुझे भगवान ने शरीर का चोला समाज-सेवा के लिए ही दिया है। ऐसा शख्स जो खायेगा, नाप से खायेगा। जैसे चर्खे को तेल दिया जाता है तो न ज्यादा देना उचित है, न कम। विज्ञान के प्रयोग के मुताबिक वह शरीर की मशीन को तेल देगा और वह मशीन समाज की सेवा में सुपुर्द कर देगा। वही उपासना होगी, जिससे विकारों के खंडन में मदद होगी। इस तरह शरीर से समाज-सेवा का काम और चित्त-शुद्धि की साधना चलती रहेगी तो धीरे-धीरे अहंकार का क्षय होगा और फिर उस निवृत्ति का दर्शन होगा, जिसके लिए महापुरुष लालायित रहते हैं।

निवृत्ति के नाम पर कोई रात का खाना छोड़ता है तो कोई फलानी तरकारी छोड़ता है। इस तरह २-४ चीजें छोड़ने से क्या होगा? दुनिया में जो अन्य चीजें बची हैं, उनका इस्तेमाल तो हो रहा है। हिंदुस्तान के धर्म में एक बड़ी कमजोरी यह आयी कि यहाँ इस तरह छोटी-छोटी चीजें छोड़ने को ही धर्म मान लिया गया। खाना विज्ञान के प्रयोग के जैसा चलना चाहिए। जब प्रकृति के अनुसार शरीर चलता है, तब उसका कोई भान ही नहीं रहता है, लेकिन जब विकृति आती है, तब भान होता है। शरीर को इतना स्वाभाविक और स्वस्थ रखना चाहिए कि उसका भान ही न हो। उसे समाज की सेवा में लगा देना चाहिए। फिर उस शरीर का समाज पर भार नहीं रहेगा, बल्कि समाज को लगेगा कि यह हमारा शरीर है। अपने शरीर को सामाजिक बनाओ।

नीति को व्यवहार के साथ जोड़िए

व्यवहार में नीति से बरतो। नीति को व्यवहार से अलग किया जाता है तो नीति पंगु बनती है। अगर सत्य को व्यापार में, वकालत में, शादी में, राजनीति में और लड़ाई में नहीं लाना है तो क्या सत्य को केवल प्राथमिक शाला में बच्चों के लिए ही रखना है? सत्य का स्थान हर जगह है। उसी तरह नीति जीवन के हर पहलू में होनी चाहिए। हमारे कम्युनिस्ट मित्रों के साथ मेरी यही शिकायत रहती है।

सर्वोदय और कम्युनिज्म में अन्तर

आज एक भाई ने हमसे पूछा कि 'कम्युनिस्टों में और आप में क्या फर्क है? आप दोनों कहते हैं कि गरीबों का दुःख मिटे जमीन बँटे।' मैंने जवाब दिया कि 'एक माँ बच्चे को सुलाने के लिए शान्ति से धीरे-धीरे थपथपाती है और दूसरी तमाचा मारती है। पहला है सर्वोदय और दूसरा कम्युनिज्म।' कोई चीज लादी जाती है तो वह गलत है। समता कोई गणित की चीज नहीं है। समता के बिना जीवन चल ही नहीं सकता है। इस बात को लोग समझें तो समता न लाने की कोशिश कौन करेगा? बात यह है कि लोगों को समता की जरूरत महसूस होनी चाहिए।

अन्न बढ़ाने का व्रत लो

मुझे पूरी हवा मिलती है तो तुम्हें हवा न मिले, इसकी कोशिश मैं क्यों करूँगा? देश में हवा की कमी नहीं है, इसलिए सब पूरी हवा लेते हैं, परन्तु अन्न की कमी है, इसलिए अन्न के बारे में झगड़ा पैदा होता है। उपनिषदों में वाक्य आता है 'अन्नं बहु कुर्वीत तद् व्रतम्'।

उपनिषद् को अन्न बढ़े, इसकी चिंता इसलिए हुई कि अन्न की कमी रहेगी तो दया नहीं रहेगी, मनुष्यों में जानवरों के जैसी भावना पैदा होगी, हर कोई कोशिश करेगा कि मुझे मिले, दूसरे को मिले या न मिले। लेकिन अगर देश में अन्न भरपूर हो तो फिर हवा के जैसी ही अन्न की बात हो जायेगी। सर्वोदय-विचार में यह बात है कि अनाज कभी बेचा नहीं जाना चाहिए। सबको मुफ्त में मिलना चाहिए। देश में कम-से-कम दो साल का अनाज होना चाहिए, तभी देश का बचाव होगा। फिर लोग प्रेमी और उदार बनेंगे, उन्हें एक-दूसरे को खिलाने में आनन्द महसूस होगा और झगड़े नहीं रहेंगे। जीवन के लिए मुख्य वस्तु अन्न है, जिससे प्राण का पोषण होता है, इसलिए अन्न खूब बढ़ना चाहिए। उपनिषद् यह नहीं कहता है कि सिगरेट का स्टैंडर्ड बढ़ाओ या हर मनुष्य के लिए घड़ी हो। इन दिनों हर कोई घड़ी रखता है, जिससे यही पता चलता है कि दिन में कितने घंटे आलस में बीते। चाहे 'काला अक्षर भैंस बरोबर हो', लेकिन हर कोई फौंटेनपेन रखता है। फौन्टेनपेन और चश्मा याने विद्वत्ता की निशानी मानी जाती है। ऐसी सारी आवश्यकताओं को बढ़ाने की बात उपनिषद् नहीं करता है, वह तो कहता है कि 'अन्नं बहु कुर्वीत', क्योंकि अन्न बुनियादी चीज है। अन्न न रहे तो दया नहीं रहेगी। गुरु नानक ने कहा है "धवल धरम दया का पूत।" जिस धर्म के आधार पर हम खड़े हैं, वह दया का पुत्र है। तुलसीदास ने भी यही कहा है 'दया धरम का मूल है।' गुरु नानक ने कहा है 'भुगतली को आन दया भंडारण' ज्ञान रूपी लड्डू के लिए घी, शक्कर, आटा आदि जिस सामान की जरूरत है, वह दया के भंडार में मिलता है। दया के बिना ज्ञान का पोषण नहीं हो सकता है। ऐसी मूलभूत चीज जो दया है, वह टिक नहीं सकती है, अगर देश में अन्न की कमी हो।

सारी जमात एक है

होना तो यह चाहिए कि किसी देश में अन्न की कमी हो और दूसरे देश में अन्न ज्यादा हो तो वहाँ से मुफ्त में अन्न भेजा जाना चाहिए। लेकिन इन दिनों अमरीका में अच्छी फसल आयी तो उसे जलाते हैं, ताकि अनाज का दाम न गिरे। लेकिन हमें सोचना चाहिए कि हमारी कुल जमात एक है और इन्सान पर कहीं भी संकट आया तो सुखी लोगों को वहाँ मदद पहुँचानी चाहिए। यह तब हो सकता है, जब अन्न खूब बढ़ेगा। इसलिए यह भौतिक कार्य होते हुए भी उपनिषदों ने कहा 'अन्नं बहु कुर्वीत'।

त्रिशक्ति का समन्वय

इन दिनों हमने भौतिक, नैतिक और आध्यात्मिक कामों को अलग-अलग करके तीनों का खंडन किया है। अभी मैं जीभ से बोल रहा हूँ और आप कानों से सुन रहे हैं। लेकिन मेरी जीभ और आप के कान काटकर यहाँ रख दिये जायँ तो न मैं बोल सकनेवाला हूँ, न आप सुन सकनेवाले हैं। जीभ तब बोल सकती है, जब शरीर के साथ जुड़ी हुई होती है, कान तब सुन सकते हैं, जब वे शरीर के साथ जुड़े हुए होते हैं। इस तरह अध्यात्म, नीति और व्यवहार—जीवन के तीन अंग हैं। उन्हें अलग करो तो तीनों मुरझा जायेंगे।

कोई पूछेगा कि सर्वोदय का कार्य आध्यात्मिक है, नैतिक है या भौतिक है? तो मैं कहूँगा कि आप उसे अपनी मर्जी के मुताबिक नाम दे सकते हैं। इससे जमीन का मसला हल हो रहा है, राजनैतिक, सामाजिक क्रांति हो रही है इसलिए यह भौतिक कार्य है, प्रेम से, करुणा से काम हो रहा है, इसलिए यह नैतिक कार्य है और इसमें सबका हृदय एक कर दिया जाता है, हम सब एक हैं, ऐसी भावना पैदा की जाती है, इसलिए यह आध्यात्मिक कार्य है। ईसामसीह ने कहा था कि 'पड़ोसी पर वैसा और उतना ही प्यार करो, जैसा और जितना तुम अपने पर करते हो।' अगर उन्होंने 'पड़ोसी पर प्यार करो', इतना ही कहा होता तो वह बड़ी बात न होती। हम पड़ोसी पर थोड़ा प्यार करते ही हैं, क्योंकि मानव प्यार करना चाहता ही है और हम चाहते हैं कि वह भी हमसे प्यार करे। लेकिन ईसामसीह ने जो कहा, वह अध्यात्म का विचार है। अध्यात्म के बिना वह नहीं बन सकता है। मैं मुझमें और पड़ोसी में कोई फर्क नहीं देखूँगा, तभी उस पर मेरे जैसा प्यार कर सकूँगा। इस तरह अध्यात्मविद्या हमारी बुनियाद है, नीति-विचार मकान है और व्यवहार छत है। तीनों बातें जुड़ी हुई रहती हैं, तब जीवन ठीक चलता है।

विनोबा की दावत

आठ साल से हमारी यात्रा चल रही है, लेकिन मुझे थकान महसूस नहीं होती है, बल्कि उत्साह ही मालूम होता है। कभी मैं बीमार पड़ता हूँ, पेट में दर्द हो जाता है तो मैं सोचता हूँ कि शरीर में कोई दोष होगा या पूर्व जन्म का पाप होगा। लेकिन बीमारी के बावजूद मेरी यात्रा तो चलती ही है, क्योंकि मेरे हृदय में असमाधान का लेश भी नहीं है। मुझे पूरा समाधान है। मैं मानता हूँ कि मैं आत्मदर्शन की कोशिश कर रहा हूँ, मैं मेरे और समाज के नैतिक उत्थान का कार्य कर रहा हूँ और यह समाज की भौतिक उन्नति का कार्य हो रहा है। यहाँ पर एक कहावत है 'इकट्ठ, लोहे की लट्ठ'। इस काम में आध्यामिक, नैतिक और भौतिक तीनों इकट्ठे हो जाते हैं, इसलिए यह लोहे की लठ्ठ है। इसलिए मेरी आप सबसे दावत है कि आप इस काम में शरीक हो जाइये, इससे आपको बड़ा आनन्द महसूस होगा। ऐसी मस्ती आयेगी कि सुस्ती चली जायेगी। हर्ष शोक आदि नहीं रहेंगे, नित्य निरंतर समाधान, आनंद रहेगा।

◆◆◆

प्रार्थना-प्रवचन हरियाना (पंजाब) १३-५-'५९

इस आन्दोलन से घर, गाँव और राष्ट्र की समस्याओं का अवश्य हल होगा

आज यहाँ के भाइयों ने कुछ सवाल पूछे हैं! वे सवाल ऐसे हैं, जिनका जवाब हम कई बार दे चुके हैं। फिर भी वैसे सवाल उठते हैं और हम जवाब देते हैं। इससे विचार-प्रचार में मदद मिलती है। हम चाहते हैं कि लोग विचार समझें। जनता विचार समझेगी, तभी उसे अमल करने की प्रेरणा मिलेगी। विचारों में वह शक्ति है, जो एक बार मनुष्य के दिल और दिमाग में स्थान पा लेने के बाद उसे तदनुरूप आचरण करने के लिए मजबूर कर देती है। हम खुद इसकी मिसाल हैं। हम बैठ नहीं सकते हैं। जो विचार हमारे दिल में दाखिल हो गये हैं, वे हमें बराबर घुमा रहे हैं। वे विचार मुझे कहते हैं कि तुम्हारा काम विचार समझाने का है। लोग उन पर अमल करते हैं या नहीं, यह देखने का भार तुम्हारे ऊपर नहीं है।

सामाजिक कुरूढ़ियों पर सर्वोदय का प्रहार

अब मैं क्रमशः एक-एक प्रश्न पर कुछ कहूँगा। पहला सवाल है—सर्वोदय का अर्थ है सबका उत्थान। इसलिए क्या सर्वोदय जातिवाद, दहेज-प्रथा, अन्यान्य कुरीतियाँ तथा भिखमंगी के निर्मूलन के लिए भी कुछ कर रहा है? इसके उत्तर में मैं कहना चाहता हूँ कि जी हाँ! बहुत कुछ कर रहा है। इन आठ वर्षों में कुरीतियों पर हमने बहुत प्रहार किया है। हम बराबर यही कहते हैं कि गाँव-गाँव के लोग ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करें। अभी देहात दुःखी है, अविकसित है। उनका विकास हुए बिना देश को जो आजादी प्राप्त हुई है—उसका कोई महत्त्व नहीं है। गाँवों की तरक्की के लिए यह आवश्यक है कि गाँव-गाँव में स्वराज्य हो और गाँव-गाँव एक परिवार बने। जैसे परिवार के सुख-दुःख होते हैं, वैसे ही गाँव के सुख-दुःख हों। जिस किसी भी घर में शादी हो, वह भी सारे गाँव की मानी जाय। गाँव का उत्सव हो, उसमें प्रत्येक घर से मदद दी जाय, ताकि दहेज और कर्जे के सवाल खत्म हो जायँ। शादी तथा अन्यान्य प्रसंगों पर और क्या-क्या करना है, इसके बारे में सारे गाँववाले सम्मिलित होकर तय करें।

ग्राम-स्वराज्य से गाँववालों में स्वराज्य की भावनाएँ पैदा होंगी। फिर लोगों का ध्यान समाज-सुधार की ओर जायगा। 'एक ही साधे सब सधै, सब साधे सब जाय'। आज समाज के सारे प्रश्नों को हम अलग-अलग ढंग से लें और उनके समाधान का प्रयत्न करें तो कुछ नहीं होगा। सर्वोदय समग्र दृष्टि से सवालों का हल करने की दिशा में अग्रसर है। अब समाज और व्यक्ति के हितों में टक्कर नहीं आनी चाहिए। दोनों की अलग-अलग सत्ता स्वीकार करना भी गलत होगा। समाज व्यक्ति की चिन्ता करे और व्यक्ति अपनी सेवाएँ समाज को समर्पित कर दे, यही इस युग की आवश्यकता है। इस आवश्यकता की पूर्ति करते हुए हमें बुनियादी समस्याओं पर प्रहार करना होगा। जमीन की मालकियत—यह वर्तमान की सबसे बड़ी समस्या है। हम इसी समस्या का हल करने में लगे हुए हैं। हमें आशा है कि इससे दूसरी समस्त समस्याओं का हल होने में भी आसानी हो जायगी।

इस आन्दोलन की विशेषता

"आपका आन्दोलन प्रतिगामी है या क्रान्तिकारी? क्या इसके कारण 'समाजवादी लोकशाही' के आन्दोलन की गति धीमी नहीं पड़ी? सभी राजनैतिक पक्ष आपके आन्दोलन का

समर्थन करते हैं तो फिर कानून के द्वारा आर्थिक समस्या हल करने में क्या रुकावट है ?" यह दूसरा प्रश्न है। इस प्रश्न में बहुत ही नासमझी है। यह आन्दोलन केवल आर्थिक समस्याओं के निवारण के लिए ही नहीं है। इससे समाज और व्यक्ति के बीच जो सम्बन्ध हैं, उन्हें ठीक करने का काम हो रहा है। यह काम तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक लोग अपने पाँवों पर खड़े नहीं हो जाते।

यह आन्दोलन अच्छाइयाँ इकट्ठी करनेवाला है

हर समाज में कुछ गुण होते हैं, कुछ दोष। पश्चिमी देशों से क्या चीजें लेनी हैं और क्या छोड़नी हैं ? आधुनिक बातों में से किन्हें स्वीकार करना है और किन्हें अस्वीकार करना है? ऐसी चर्चाओं में हम नहीं जाते। हमारा मुख्य उद्देश्य बुरी चीज छोड़कर भली चीजें ग्रहण करने का है। जहाँ भी, जो भी गुण मिलें, इन्हें हम स्वीकार करेंगे। इस प्रक्रिया में पुरानी चीजों की अच्छाइयाँ ली जायेंगी और विदेशों के गुण भी स्वीकार किये जायेंगे।

हम कानून को नहीं रोकते। नागपुर का एक छोटा सा प्रस्ताव हुआ है। यद्यपि वह बहुत छोटा है, फिर भी वह आठ वर्ष के भूदान के प्रचार का ही फल है।

क्रान्ति का त्रिकोण

तीसरा प्रश्न है कि 'क्या केवल व्यक्ति में परिवर्तन लाने से समाज बदल जायगा ?' केवल व्यक्ति में परिवर्तन लाने से समाज बदल जायगा, ऐसा हम भी नहीं मानते। विचार-परिवर्तन, जीवन-परिवर्तन और फिर समाज-परिवर्तन, यह क्रान्ति का त्रिकोण है। व्यक्ति में परिवर्तन लाना, यह विचार का पहला अंग है। सन्तों ने व्यक्तिगत जीवन में परिवर्तन लाने का काम किया। आप देख रहे हैं कि उनका प्रयत्न भी निष्फल नहीं गया। उन्होंने जो कुछ किया, वह अगर न किया गया होता तो आज हम 'जानवर' होते। उन्हीं की बदौलत आज हम सभ्य हैं, शिष्ट हैं। उन्होंने भलाई का प्रचार किया, किन्तु वे सामूहिक भलाई का काम नहीं कर सके। इनसे जमीन लेकर उनको देना, ऐसा आन्दोलन हमने आरंभ किया है। लगभग पचास लाख एकड़ जमीन तथा पाँच हजार ग्रामदान की प्राप्ति के बाद हम पंजाब में आये हैं। जमाना बदल गया है। इस समय सामूहिक कार्यक्रम के बिना विकास का काम होना संभव नहीं है। सामूहिक कार्यक्रम से समाज-परिवर्तन यानी परिस्थिति-परिवर्तन का काम हो जाता है। परिस्थिति बदलने की दिशा में हम बराबर प्रगति कर रहे हैं।

आज लोग हर बात में सरकार का नाम लेते हैं। वे कानून-निर्भर हो गये हैं। यह भी एक प्रकार की दासता है। हम इस दासता का भी निराकरण चाहते हैं। हम चाहते हैं कि लोक-शक्ति जागृत हो और उसीसे सारा काम हो। अभी हमारे आन्दोलन में दो बुनियादी बातें हैं : (१) जीवन के बुनियादी सिद्धान्त और (२) जमाने की माँग। दोनों को जोड़ कर हमारा काम चल रहा है। सत्यनिष्ठा, परस्पर सहयोग, सत्य, प्रेम, करुणा आदि जीवन के मूलभूत सिद्धान्त हैं और जमीन का मसला हल करना, जमाने की माँग है। इन दोनों का समन्वय इस आन्दोलन में है। इसलिए इसमें समाज-परिवर्तन का पूरा माद्दा है।

हमारा आन्दोलन और राजनैतिक पक्ष

क्या वास्तव में सभी राजनैतिक पक्ष आपका समर्थन करते हैं या समर्थन के नाम पर अपनी दुर्बलताओं को ढँकने के लिए उन्होंने एक स्वांग रच रखा है ? सच तो यह है कि चौथा सवाल सवाल ही नहीं है। इस बात के माध्यम से प्रश्नकर्ता ने अपना मन्तव्य भी व्यक्त कर दिया है। मैं मानता हूँ कि इस समय समस्त राजनैतिक पक्षों की हालत बड़ी ही दयाजनक है। वे सारे के सारे सत्ता-प्राप्ति में लगे हुए हैं। एक सत्ताधिकारी है तो दूसरा सत्ताभिलाषी है। सभी सत्ता के इर्दगिर्द चक्कर लगा रहे हैं। उनका दारोमदार ही सत्ता है। सत्ता से ऊपर उठकर सोचने का सामर्थ्य अभी उनमें नहीं है। हाँ, फिर भी यह सच है कि सभी पक्षों ने हमारे काम में कुछ-कुछ सहयोग दिया है। व्यक्तिगत तौर पर हमें जितनी मदद मिली, उतनी ही मदद अगर पार्टी के नाते उनसे मिलती तो बहुत काम होने की संभावनाएँ थीं। कांग्रेस, पी० एस० पी०, कम्युनिस्ट और दूसरों पक्षों ने इस काम को आशीर्वाद दिया है, लेकिन काम कुछ भी नहीं किया। तब क्या उनका आशीर्वाद देना ढोंग कहा जायगा ? नहीं, वे लोग ढोंगी नहीं हैं, लेकिन ढोंग उनके हाथों से हो जाता है।

येलवाल-परिषद् में सारे नेता एकत्रित हुए थे। वहाँ प्रस्ताव पास हुआ था कि इस काम को सहकार तथा सहयोग देना चाहिए। नेताओं ने आदेश दिया, किन्तु नेताओं के आदेश पर अनुयायियों ने अमल नहीं किया है। अमल करने की बातों में सभी स्वतन्त्र हैं। लोगों के पास नेता जाते हैं, तब सिर्फ इतना ही देखते हैं कि उनकी पार्टी को 'वोट' मिले या नहीं। सत्ताधिकारी पक्षवाले हों तो वे अपने अच्छे कामों की फेहरिश्त पढ़ देते हैं और सत्ताधिकारी पक्षवाले हों तो सरकार के बुरे कारनामों का इजहार करते हैं। पक्षवालों का काम ही यह है कि अपने लिए अनुकूल मत और दूसरे के लिए प्रतिकूल मत निर्माण करते हैं। आखिरी उद्देश्य होता है चुनाव जीतना। दोनों सरकारपरायण तथा सरकार के उपासक होते हैं। लक्ष्मण, भरत और हनुमान राम की भक्ति करते थे, वैसे ही रावण और कुंभकर्ण भी भक्ति करते थे। दोनों की दो प्रकार की भक्ति थी। वैसे ही ये पक्षवाले भी दो प्रकार के लोग हैं। फरक सिर्फ इतना ही है कि ये भगवान की जगह सरकार को मान्यता देते हैं। एक सरकार की स्तुति करता है और दूसरा निंदा। इनके पास तीसरा कोई धन्धा नहीं है। इनकी बड़ी ही दयनीय दशा है। ऐसी स्थिति में भी नेता लोगों ने ट्रेन को हरी झंडी दिखा दी है। वे हरी झंडी न दिखाकर लाल झंडी दिखाते तो हमें काम में जरा कठिनाई होती। लेकिन उन्होंने अपना मत व्यक्त कर हरी झंडी दिखा दी। इसमें वे ढोंग नहीं कर रहे हैं, ढोंग हो गया है।

एक मनुष्य भगवान की प्रार्थना के लिए बैठता है। वह ढोंग नहीं करता। लेकिन उसका चित्त खेती, घर, धन्धा या सिनेमा की ओर चला जाता है। इसमें अब क्या समझा जाय ? सद्भावना तो उसमें विद्यमान है, लेकिन उसका चित्त पर काबू नहीं है। इसलिए उसके न चाहने पर भी ढोंग हो जाता है।

कांग्रेस, पी० एस० पी०, कम्युनिस्ट, जनसंघ आदि पक्षों ने दिल से हमारा समर्थन किया है। पी० एस० पी० वाले कहते हैं—यह तो हमारा ही कार्यक्रम है। कम्युनिस्ट कहते हैं—कार्लमार्क्स ने व्यक्तिगत मालकियत मिटाकर सामूहिक मालकियत बनाने का काम ही किया था। जनसंघवालों को इसमें भारतीय संस्कृति के दर्शन होते हैं। इस प्रकार कोई मालकियत मिटाने के नाम पर, कोई जमीन बाँटने के नाम पर और कोई संस्कृति के नाम पर इसका समर्थन करते हैं। पर वे पार्टी के प्रोग्राम के तौर पर इसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। क्योंकि उनका विश्वास जन-शक्ति पर नहीं, सत्ता पर है।

यह आन्दोलन कैसे सफल होगा ?

पाँचवा सवाल है : 'जब कि सत्ताधारी पक्ष भौतिकवाद को बढ़ावा दे रहा है, तब आपका यह नैतिक आन्दोलन कैसे सफल हो सकता है ?' यह आन्दोलन न मेरा है, न मेरे बाप का। दुनिया में एक शख्स का कभी कोई आन्दोलन नहीं होता। इसलिए मैं कहना चाहता हूँ कि जब तक 'आपका आन्दोलन' यह शब्द चलेगा, तब तक यह आन्दोलन सफल नहीं होगा। ऐसा सवाल पूछनेवाला शख्स दूर खड़े तमाशा देखना चाहता है! हमें तमाशबीन लोग नहीं चाहिए। आज के जवान लोग काम तो करेंगे नहीं, दूर खड़े तमाशा देखेंगे तो वे निष्क्रिय, निर्लज्ज और नालायक बन जायेंगे। हम नौजवानों को तेजस्वी, क्रियाशील और संकल्पवान देखना चाहते हैं। इसलिए 'हमारा आन्दोलन सफल कैसे होगा,' ऐसा सवाल पूछने के लिए कहते हैं। ऐसे सवालों में जोर आता है। खैर, आपको यही सवाल पूछना है तो मैं कहूँगा कि मुझे तो मंगल, गुरु,शुक्र, शनि का ज्ञान नहीं है, जिन्हें वह ज्ञान हो, वैसे ज्योतिषियों से जाकर पूछो।

मूल में यह सवाल इस तरह होना चाहिए कि इधर नैतिक मूल्यों की गिरावट हो रही है, उधर भौतिक योजना बन रही है। इस स्थिति में हमारा आन्दोलन कैसे सफल होगा ? नैतिक मूल्यों की गिरावट का सबसे बड़ा कारण लोगों का यह विश्वास है कि हम सारा काम सत्ता के जरिये करेंगे। इसीलिए सारी योजना सत्ता प्राप्त करने की ही बनायी जाती है। सत्ता-प्राप्ति के बाद फिर आपस-आपस में संघर्ष शुरू हो जाता है। कोई सत्ता में चला गया और कोई नहीं जा सका तो उनका आपस-आपस में मत्सर शुरू हो जाता है। 'अमुक शख्स सिर्फ ६ साल जेल में था, वह तो मंत्री बन गया और मैं ९ साल जेल में था, जिसमें मुझे मंत्री नहीं बनाया गया।' इस प्रकार के व्यवहार का परिणाम यह हुआ है कि जनता में पुरुषार्थहीनता आ गयी है। सब अलग-अलग टुकड़ों में बँट गये हैं। आज आपस में किसी की नहीं बनती।

जनता में एक पक्ष का नेता जाता है, दूसरे पक्ष के नेता को गाली देता है। दूसरे पक्ष का नेता भी जाकर वही काम करता है! जनता दोनों की गालियाँ सुनती है, दोनों की गालियाँ इकट्ठा करती है, और फिर दोनों को गालियाँ देती है। मतलब यह कि जनता में अब किसी के लिए कोई आदर नहीं रहा है। ऐसी आदरशून्य जनता से हिन्दुस्तान की तरक्की कैसे होगी ? यह निष्क्रियता खतरनाक है। इससे तो मैं नास्तिकता को पसन्द करता हूँ। मुझे नास्तिकता की पर्वाह नहीं है। 'नानक बीग से बेपर्वाह', परमेश्वर को उसकी पर्वाह नहीं है। वह मजबूत है। कोई उसे माने न माने। परन्तु यह जो विशेषतः श्रद्धाहीनता आयी है, यह खतरनाक है। इस समय अब थोड़ी सी दो आने, चार आने भर श्रद्धा इस सर्वोदय के काम में दिखाई पड़ती है तो इसकी भी टीका और निन्दा शुरू कर दी है। मुझे तो इससे खुशी होती है! खैर, मुझे इससे कोई दुःख नहीं है। मैं आपकी निन्दा और आक्षेप सुनने के लिए तैयार हूँ।

आज ही एक भाई ने पूछा कि "आपके इस आन्दोलन को सफल होने में कितनी देर लगेगी ?" मैंने कहा "जितनी देरी आप लगायेंगे, उतनी। मेरी बात सुनकर वे भाई खामोश हो गये। लाजवाब हो गये। मैं रोजमर्रा काम करता हूँ, छुट्टी कभी नहीं लेता। आप करते हैं ? अब तक कुछ किया है ? अगर नहीं तो फिर आपके लिए शरमिन्दा होने की बात है। आत्मा सत्यकाम सत्यसंकल्प होता है। इसलिए आप चाहें कि यह आन्दोलन '५९ साल में सफल हो जाय, सफल हो जायगा और बाबा नाचेगा। बाबा को खुशी होगी। जो सत्यसंकल्प होता है वह पूरा होता है और निष्फल भी हुआ, तब भी मैं सफल हूँ। हर हालत में मेरी सफलता निश्चित है। "हतो वा प्राप्स्यसे स्वर्गम्, जित्वा वा भोक्ष्से महीम्।"

(सभा में एक बहन ने उठकर कहा 'संत विनोबा की जय'।)—'संत विनोबा की जय' भी नहीं करनी चाहिए। यह गलत है। होना यह चाहिए कि हम सब अपना काम सफल बनाने में लगें। स्वराज्य की भावना लोगों में कैसे निर्माण हुई ? कांग्रेस की स्थापना होने के २० साल बाद स्वराज्य शब्द निकला और ३० साल बाद स्वराज्य मिला, उसमें कैसे सफलता मिली ? बच्चा-बच्चा बोलने लगा 'भारत छोड़ो-भारत छोड़ो' उससे एक हवा, वातावरण तैयार हुआ। सद्-विचार, बुनियादी धर्म-विचार किसी एक मनुष्य के दिमाग में आता है, किसी एक जीभ से उसका उच्चारण होता है। सिखों का विचार गुरु नानक को सूझा, इस्लाम का विचार महंमद पैगंबर के दिमाग में आया। बुनियादी धर्म-विचार किसी एक मनुष्य को सूझता है और एक जीभ से उसका उच्चारण होता है, लेकिन उसके निमित्त से वह अगर परमेश्वर की आवाज़ हो तो फिर लख-लख जिव्हा बोलने लगती हैं। "एक दूजी भी लख होवे। लख होवे लख-बीस। अखलख गेडा डालिये। एक नाम जगदीश।"

यह आंदोलन मेरा नहीं है मुझे क्या पड़ी है ? इस उम्र में मैं प्रचारक नहीं बन सकता हूँ। जवानी के ३० साल मैंने शिक्षण अध्ययन, ग्राम-सेवा, बुनकाम, ध्यान, मनन आदि में बिताये। क्या कभी मैं बाहर आता था ? जनता मेरा नाम भी नहीं जानती थी। १९४० में व्यक्तिगत सत्याग्रह के समय बापू ने मेरा नाम जाहिर किया और जनता को मेरा परिचय दिया। तभी कुछ परिचय हुआ। बुढ़ापे में यह काम करने की प्रेरणा हुई—इसका दूसरा कोई कारण नहीं है, सिवाय इसके कि यह ईश्वर की प्रेरणा है। मेरी न कोई संस्था है न कोई तावेदार। मेरे साथ जो ये कोई Report लेते हैं, कोई साथ चलते हैं, सेवा करते हैं, उनसे भी मेरा कोई ताल्लुक नहीं है। उनको प्रेरणा हुई, और वे आये हैं। कोई कालेज छोड़ के आये हैं, कोई नौकरी छोड़ के आये हैं और काम करते हैं। इसमें आश्चर्य नहीं है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि ईश्वर यह चाहता है।

इसलिए आप इसे अपना आन्दोलन समझियेगा, अपना काम समझकर इसमें आइयेगा और इसमें कोई दोष दीखते हों तो दूर कीजियेगा। यहाँ (पंजाब में) अभी तक साहित्य पहुँचा नहीं है, विचार पहुँचा नहीं है। देरी हो गयी है। जो बीज जल्दी बोया जाता है, वह जल्दी खत्म हो जाता है। जो देरी से बोया जाता है, उसका मजबूत वृक्ष बनता है। वैसे यहाँ देरी से विचार-बीज बोया जा रहा है। तो मजबूत वृक्ष बनेगा और उसकी छाया में आप सब काम करेंगे—ऐसी आशा है।

♦♦♦

अनुक्रम

१. सुखी क्षेत्रों में सर्वोदय-आन्दोलन.... खंभात ६ नवंबर '५८ पृष्ठ ४३७
२. अध्यात्म-विद्या बुनियाद है, नीति-विचार.... होशियापुर १५ मई '५९ „ ४४०
३. इस आन्दोलन से घर, गाँव.... हरियाना १३ मई '५९ „ ४४२

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी।